

करौंधी

बनारस के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सटा एक गाँव है करौंधी, जहाँ एक आई टी आई नाम का रोड है जिसके आदि और अन्त का तो मुझे पता नहीं है, पर मैं इसकी एक सीमित लम्बाई को जानता हूँ। ये मित्र निकेतन से शुरू होकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार के सामने बसी लंका में खो जाती है। मित्र निकेतन से सटे आई टी आई रोड पर एक पुरानी शैली में बना मकान हमारे माता पिता का है जिसमें मेरे दो भाई भी सपरिवार रहते हैं। पिताजी के रिटायरमेंट के बाद उनकी सारी जमा की गई पुंजी ये मकान हड़प लेने के बाद भी उन्हें चैन से अपना बुढ़ापा काटने नहीं दे रही है। उसे हर वर्ष अपने साज श्रृंगार के लिए पैसों की जरूरत पड़ती रहती है। उसका मेकअप हमारे यहाँ की बरसात हर बरस धो पोंछ जाती है। मैं कई बार आई टी आई रोड पर खड़ा होकर उसकी सुन्दरता निहारा। उसकी सुन्दरता सूर्यदेवता के पश्चिम दिशा में खिसकने के साथ निखरने लगती थी। सामने एक कतार में रोपे अशोक के पेड़ों के पीछे खड़ी वो अपनी सभ्रान्तता विखेरती रहती थी। उजाला होते ही उसकी एक एक झुर्री तक देखी जा सकती थी।

आई टी आई रोड पर रोड के नाम पर पता नहीं कभी के डाले दो चार रोड़े गिट्टियों आज भी देखे जा सकते थे, पर इसकी दुर्दर्शा पर किसी को भी दया न आती थी। पौ फटने के बाद गई शाम तक इसकी छाती ट्रेक्टरों और ट्रालियों से धूनती रहती थी। पैदल चलने वालों के लिए इस रोड के दोनों तरफ सूतरे मांग जितने चौड़े रास्ते तो बने थे, पर गाड़ी मोटर को देखते ही उन्हें खाईयों में उतरना पड़ जाता था। इस रोड के एक ओर विश्वविद्यालय के अहाते की ऊँची दीवार धूल से अँटी रहती थी। दूसरी ओर दूर दूर तक खुला निर्जन मैदान फैला हुआ था। इस ओर भी मुझे एक पक्की दीवार नजर आती थी, जो जगह जगह से टूटी हुई थी या तोड़ दी गई थी। मित्र निकेतन और करौंधी चौक के बीच रोड की बाँधी तरफ एक भूतहे धर्मशाले के अलावे एकाध स्पेयर पार्ट्स की दुकाने थीं। करौंधी चौक को बरगद का एक विशाल पेंड बनारस की प्रचन्ड गर्मी से बचाये खड़ा था। पैदल चलने वालों या रिकसेवालों के सुस्ताने की ये एकमात्र जगह थी। इस चौक पर आटों की एक चक्की, एक गल्ले की दुकान के अलावे एक सब्जी की दुकान एक सैलून दो पान बिड़ी की गुमटियाँ और सायकलों के पंक्वरो के मरम्मत की एक दुकान थी। बरगद पेंड के नीचे हमेशा आठ दस रिकसेवाले सुस्ताते दिखते थे।

आई टी आई रोड के दोनों तरफ की खाईयों में न जाने कितने परिवार तीन पतरों और बोरियों की झुग्गी डाले जीये जा रहे थे। हर दिन मैं अपने छत पर खड़ा इन झुग्गियों की गतिविधियों देखता रहता था। शायद ही ऐसी कोई झुग्गी रही होगी, जिसके सामने मुझे एकाध नंग धड़ंग बच्चे खेलते नजर न आते हों।

हमारे छत से मुझे एक झुग्गी बड़ी साफ नजर आती थी, जिसके सामने की गतिविधियों में कई दिनों से देखे जा रहा था। इस झुग्गी में रहने वाले परिवार में पाँच जन थे। मैं रोज सुबह अलार्म लगाकर ठीक चार बजे उठ जाता था। ठीक इसी वक्त इस झुग्गी की औरत भी अपनी खाट छोड़ती थी। अपने सीने से वो एक बच्चे को सटाये उठती थी फिर वो उसे अपने दूसरे बच्चे के बगल में लिटाकर धूँधलके में अपनी झुग्गी के पिछवाड़े सरक लेती थी। उसका मरद अपनी बंसहटी पर एक बच्चे के साथ सोया रहता था। फिर ये औरत मुझे अचानक दो पानी से भरी वाल्टियाँ लिये सड़क से खाई में नीचे उतरती दिखती थी। तब उसका मरद भी जगा अपनी खाट पर बिड़ी पीता रहता था। उसके बदन पर एक फूलपैट और एक सैन्डो बनियान होती थी। उसके गले में मनौती का एक काला धागा मुझे दूर से भी नजर आता था। जब वो अपनी दूसरी बिड़ी मुलगा कर अल्यूमिनीयम के पिचके लोटे के साथ कहीं चल देता था तो उसकी पत्नी अपने झुग्गी के सामने की जमीन बुहारने लग पड़ती थी। धूल के गुब्बार उठते थे जिसमें उसके तीनों सोये बच्चे नहाते रहते थे। वो निर्द्वन्द सोये रहते थे। उसका पति वापस आकर एक नीम की दतुअन चुभलाने बैठ जाता था। उसके बगल में अल्यूमिनीयम का वही लोटा पानी से लबालब भरा पड़ा रहता था। उसकी पत्नी चूल्हे की आग मुलगाकर उसपर एक अल्यूमिनीयम की ही बड़ी सी देगची पानी से भर कर चढा देती थी। जब तब वो अपनी झुग्गी में बोरों का परदा हटाकर घूसती और अपने आँचल में कुछ न कुछ लाकर देगची में झोंक जाती थी। उसका पति अर्भी भी उंकड़ू बैठा खांसता खंखारता अपनी दतुअन से जुझा रहता था। जब देगची से भात की पहली खूशबू बाहर आती थी, तब इनके तीनों बच्चे अपनी नींदियाई आँखों लिए चूल्हे के करीब आकर बैठ जाते थे। तब तक झुग्गी का मरद भी एक बोरी की धूल झाड़ झूड़ कर चूल्हे के समीप ही बिछाने लगता था। बोरी के बिछते ही उसके तीनों बच्चे उस पर बिराजमान हो जाते थे। वो अपने सबसे छोटे बच्चे को अपनी गोद में लेकर बोरी पर अपनी जगह बना लेता था। जब उसकी पत्नी एक बड़े से परात में देगची का तीन चौथाई मांड भात उनके सामने रखती थी, तब वो परात पर टूट पड़ते थे। उन्हें अपने हाँथों या उंगलियों के जलने की परवाह ही नहीं रहती थी। परात को चाटने चूटने के बाद यदा कदा ही इन्हे रोपौअने की जरूरत पड़ती थी। मरद खा पीकर एक बिड़ी मुलगा लेता था और उसकी पत्नी परात मांजने बैठ जाती थी। आठ बजे के आसपास मरद अपनी झुग्गी के बगल खड़ा रिकसा लेकर जब खाई की ऊँचाई की तरफ बढ़ता था, तब रिकसे की सीट पर उसके तीनों बच्चे बैठे खिलखिलाते रहते थे और उसकी पत्नी पीछे से रिकसे को ठेलने में लगी रहती थी। मरद के बदन पर एक पूरे बांध की कमीज होती थी। वो एक बिना फीतों की बूट भी पहने होता था। सड़क पर आकर जब वो अपने सर पर एक लुंगी की पगड़ी बांध कर एक सस्ता सा धूप वाला चश्मा अपनी आँखों पर चढाता था, तो उसकी पत्नी तीनों बच्चों को रिकसे से उतारकर सड़क के किनारे खड़ी हो जाती थी।

सूर्य देवता अपने तमतमाने की तैयारी में लगे होते थे और रिकसेवाले की पत्नी अपनी गृहस्थी के सामान बटोरने में। दोनों खाटों के चिथड़े वो बटोर सहेज के अपनी झुग्गी में पहुँचाती थी। फिर वो अपनी दोनों खाटें अपनी झुग्गी के पीछे खड़ी कर देती थी। चूल्हे पर की देगची भी झुग्गी के अन्दर पहुँचा कर अधजली लकड़ियों को ढंग से झुग्गी के पीछे सजा देती थी। जमीन तक लसड़ते झुग्गी के परदे पर तीन चार ईटें जमा देने के बाद दस बजे के आसपास पूरा परिवार झुग्गी में समा जाता था। अब इन्हे सूर्य देवता के तमतमाने और अपनी भौँहे चढाने की कोई फिकर न रह जाती थी।

अनुमानतः रिकसेवाले की उम्र तीस वर्ष के आसपास, उसकी पत्नी की बाईस तेईस वर्ष और बच्चों की यही दो वर्ष से पाँच वर्ष के बीच रही होगी। पता नहीं दिन भर झुग्गी में बैठे ये क्या करते रहते थे!

शायद ही ऐसा कोई दिन रहा होगा, जब बनारस में लूह न चलती हो। कभी कभी तो मुझे लगता था कि उनकी झुग्गी अब उड़ी कि तब उड़ी। लूह

उनकी झुग्गी झकझोरती रहती थी। आए दिन किसी न किसी झुग्गी की छप्पर या दीवारों ये भीषण आँधियों उजाड़े या उखाड़े रहती थी, पर इस झुग्गी का वो बाल बांका तक न कर पाई थी। कभी कभी इस झुग्गी के भी छप्पर से दो चार ईंटे लुढ़क कर नीचे आ गिरते थे या बोरियों की दीवारें रह रहकर फड़फड़ा कर ऊपर तक उठ जाती थी, पर मैं इस झुग्गी के अन्दर की गृहस्थी या जीवन से अपरिचित ही रहा।

इस झुग्गी का जीवन दुबारा छ बजे शाम के बाद ही लौटता था, जब रिकसावाला पसीने से लथपथ घर वापस लौटता था। वो अपना रिकसा अपनी झुग्गी के बगल में लगाकर उसकी हैंडल पर अपनी कमीज सूखने के लिए डाल देता था जिसकी जेब से उसके धूप वाला चश्मा झाँकता रहता था। उसके बच्चे रिकसे की सीट पर बैठे रहते थे। अपनी पत्नी के हाँथ में एक पोटली थमाके वो झुग्गी की मरम्मत में लग जाता था। पोटली का सामान झुग्गी में रखकर उसकी पत्नी अपनी दोनो बाल्टियाँ लिये पानी लाने चल देती थी। शाम के वक्त इस परिवार में चाय भी बनती थी, जो बच्चों को भी मिलती थी। थरिया, कटोरी लोटे में अपनी चाय लिये सब फूँक फूँक के पीने में लगे होते थे। थोड़ा बहुत चना चवेना भी सभी को मिल जाता था। जब पत्नी चूल्हे पर आ जाती थी, तब रिकसेवाला बंसहटियों पर विस्तर डालके अपने छोटे बच्चे के साथ एक खाट पर जा बैठता था। उसके दो बच्चे अपनी माँ और चूल्हे के समीप से हटते तक न थे। रिकसेवाले के तीनों बच्चे अपने बाप के संग ही खाते थे। सबको खिला पिला कर उसकी पत्नी अपना खाना थरिये में डालके एक कोने में सरक लेती थी। खाने का पहला कौर अपने मुँह में डालने से पहले वो अपना घूँघट नीचे करके अपने पल्ले से अपनी थरिया एक तरह से ढँक लेती थी।

अन्धेरे के घहराने के बाद इन सभी झुग्गियों की चहल पहल प्रायः खत्म हो जाती थी। कभी कभी मुझे ऐसा लगता था, जैसे आसमान का एक टुकड़ा अपने सितारों सहित इन झुग्गियों पर आ गिरा है। झुग्गियों के सामने के बरामदे में पीने जाने वाली बिड़ियों या वहाँ की मद्धम और तेज होती दिवरियों या लालटेनें धूप अन्धेरे में सितारों की तरह ही टिमटिमाती रहती थीं।

हमारे घर पर एक बूढ़ा माली हर रोज आता था। हरिहर नाम था उसका। हमारे घर पर उसे सुबह चाय के साथ खाने को दो चार पराठे भी मिल जाते थे। घर के पीछे वाली जमीन एक तरह उसी की देखरेख में थी। उसे बस सब्जियों की बीजे मिल जाती थी। जमीन गोड़ना, क्यारियाँ बनाना, उनमें बीजें डालना, उन्हें पटाना इत्यादि सभी उसी के जिम्मे था। हर तरह की सब्जियों का आधा भाग उसे मिल जाता था और आधा हमें। बनारस में इसे अधिया पर दी गई खेती कहते हैं। अपने हिस्से की सब्जियाँ हरिहर आसपास के परिवारों में बेच देता था। इस कुशकाय हरिहर से ज्यादा काम तो न होता था फिर भी हमारे घर के पीछे वाली जमीन तरह तरह की मौसमी सब्जियों से लहलहाती रहती थी। जब घर के दूसरे लोग अपने बन्द कमरों में एयर कूलरों के वावजूद बनारस की गर्मी को गाली देते रहते थे, हरिहर अपनी क्यारियाँ बढ़ाने और गोड़ने में लगा होता था। हर दूसरे फावड़े के बाद वो सुस्ताने बैठ जाता था। अपनी पगड़ी से अपने चेहरे का पसीना पोंछकर वह उसे फिर अपने सर पर रख लेता था। फावड़े को फिर से उठाने के पहले वो अपनी पूरी बिड़ी पी जाता था। जब तब वो बाहर वाले नलके पर पानी भी पीने जाता था, जिसमें नौ बजे से ही गर्म पानी आने लग पड़ता था। माँ की नजर बचा कर मैं कभी कभी उसे दस बीस रुपये पकड़ा देता था या नीचे उतरकर भाभियों से चाय बनवा कर उसे दे आता था।

हरिहर की बहू कुन्ती हमारे घर पर दो समय वर्तन मॉजने और झाड़ू बुहारू करने आती थी। बगान के नलके के नीचे एक दो ईंटों ऊंची पक्का घेरा था जिसमें उसके आने से पहले ही जूटे वर्तनों का पहाड़ सज जाता था। इस घेरे पर बैठकर वो वर्तन माजने बैठ जाती थी। थोड़ा सा पहाड़ घटा नहीं कि इस घेरे में सुबह के नाश्ते के वर्तन गिरने लग पड़ते थे। सुबह सात बजे से लगी कुंती दस बजे के आसपास ही नलके पर से उठ पाती थी। फिर झाड़ू बुहारू करके वो ग्यारह बजे अपने घर चली जाती थी। शाम को वो चार बजे आती थी। नलके का घेरा दोपहर के खाने के जूटे वर्तनो से गंजा पड़ा होता था। वो नलके पर बैठी नहीं कि शाम के नाश्ते के जूटे वर्तन घेरे में गिरने लग पड़ते थे। उसे अपनी इस घनघोर और विकट तपस्या के महीने में सौ रुपये मिलते थे और ऊपर से दो वक्त चाय के साथ रोटियाँ या पराठे। बच्चे खाने और छोड़े कपड़े भी वो पा जाती थी। माँ या भाभियों की ब्लाउजे उसे ढीली पड़ती थीं। उसकी छ वर्षीय बेटी भी उसके साथ हमारे घर पर आती थी, पर वो अपनी माँ की कोई मदद न करती थी। वो हमारे घर के कूड़े में बच्चों के फेंके गए खिलौने या गन्दे ही ढूँढती रहती थी। रोज ही उसे कुछ न कुछ वहाँ मिल ही जाता था जिसे उसकी माँ नलके के पानी से धोकर उसे खेलने को दे देती थी। कभी कोई पिचकी गन्दे, कभी कोई प्लास्टिक चप्पल, कभी कोई नंगी गुड़िया तो कभी भाभियों की छोड़ी ब्रा। रोज ही उससे ये मूल्यवान चीजें छीन ली जाती थीं और फिर से कूड़े पर फेंक दी जाती थीं। पता नहीं क्यों लोगों को इस बच्ची का कूड़े में से कुछ पा लेना फिर उनसे खेलना अचरता था!

अप्रत्याशित एक दिन कुन्ती काम पर न आई, पर हरिहर रोता कलपता हमारे यहाँ आया। उसका पूरा चेहरा आँसुओं से लथपथ था। उसकी बहू अपने बेटी के साथ किसी यार के संग कहीं की ठौर ले ली थी। हरिहर के बुढ़ापे का सहारा उसका एकमात्र बेटा तो उसे कब का अंगूठा दिग्बाके कलकत्ता सरक लिया था, पर अपने पीछे वो अपनी कमाऊ पत्नी अपने बाप की सेवा में छोड़ गया था और अब बूढ़ाई में उसके बहू की जवानी भड़की थी, गोकि उसके बहू की उम्र मात्र अष्टाईस वर्ष थी। अब हरिहर के किस्मत में अपना चूल्हा झोकना अकेले ही लिखा था।

हमारे परिवार पर तो गाज़ ही गिरी। कोई वर्तन मॉजने वाली ही नहीं मिल रही थी। अब मेरी भाभियों को नलके के नीचे बैठना पड़ता था। कुन्ती के जाने के बाद घर में पचपन पकवान बनने बन्द हो गए। मेरे भाईयों की खाने पर के स्पेशल डिसायर्स में दवा के कटौतियों की गई। यहाँ तक कि मेरे भाई और उनके बच्चे तक अपने चाय की कपें और पानी की ग्लासों नलके पर धोते नजर आने लगे। जब तब मैं छत पर खड़ा नलके के घेरे पर बैठी अपनी भाभियों के कमर पर आई चर्वियों की सलवटें देखा करता था। जब वो नव व्याहता हमारे घर पर आई थी, तो कितनी छरहरी थीं!

अब हरिहर पर ही हर तरफ से दबाव पड़ने लगा कि अब वही एक नौकरानी पैदा करे। पूछ पूछ कर उसे चाय दी जाती थी। उसे ठहरा कर दोपहर का बचा खाना दिया जाता था। यहाँ तक कि शाम का बचा खाना भी वो आकर ले जाने लगा था।

हरिहर झुग्गियों में नहीं रहता था। वो समीप के ही माथुर साहब के कोठी के बगान के एक कोने में बने एक पक्के खपरैल के कमरे में रहता था और माथुर साहब के बगान की भी देखभाल करता था। उसे साग सब्जियों की दुनिया में कम से कम हमसे तो अधिक जानकारी थी ही। वो खड़ी हिन्दी भी स्पष्ट बोल लेता था। हमारे घर पर उसके दो उपनाम थे: बूढ़ऊ और कानूनची।

एक दिन सुबह ही सुबह वो एक जवान और खूबमूरत लड़की को लिए हमारे घर आया। ये उसकी बेटी और हमारी नई नौकरानी थी। उसका नाम

चनकी था। ढंकी तोपी चनकी का कसा बदन और उसके नैन नक्श हमसे किसी की नजरों से छुपा न था। हरिहर ने उसका नाम चनकी सोच समझ के ही रखा था। उसकी सुन्दरता तो बड़े बड़े तपस्वियों के तपों को चनकाने वाली थी। आम लोगों को तो उसकी एक ही झलक मूर्छित करने के लिए काफी थी। नलके पर वर्तन धोते वक्त वो अपना कमर तक ढँके रहती थी। झाड़ू बुहारू करते वक्त उसका एक पल्ला उसके सीने को ढँका रहता था। हमारी माँ को वो अम्मा और बाबूजी को बाबूजी मेरे भाईयों को भईया, भाभियों को भाभी और घर के सारे बच्चों को वो बाबू कहके बुलाती थी, पर मुझे वो बाहर वाले भईया कहके बुलाती थी। वो जब तब मेरे कमरे के वाथरूम मे मेरे दो चार कपड़े भी धोने आती थी। उसे जब भी मैं दस बीस रुपये देना चाह। वो ये कहके टाल जाती थी कि अम्मा से उसे दो रुपये इस काम के मिल चुके हैं।

मई का महीना चल रहा था। गर्मी का ये हाल था कि बनारस की कोलतार की सड़कें तक पिघल रही थीं। धूल के बादल उड़ रहे थे। मैं गाँव गया हुआ था। वापसी मे चन्दौली से मैं एक किराये की जीप मे जा चढा। मैं पहला सवारी था। जीप मे बैठने की अमूमन आठ सीटें थी, पर जब वो चली तो उसमे तीस से भी अधिक लोग अंडसे हुए थे। मुझे ये जीप मुगलसराय मे छोड़नी पड़ी। मुगलसराय मे बड़ी मुश्किल से एक श्रीव्हीलर वाला लंका तक जाने को तैयार हुआ। हम रामनगर के रास्ते से आगे बढे। श्रीव्हीलर वाला ब्रेक पर तभी पैर रखता था, जब उसे कोई खाई दिखती थी। गढे गूढे की उसे कोई परवाह ही न थी। रास्ते मे कई गाँव आये, पर हर तरफ मुझे निर्जनता ही निर्जनता दिखी। पोखरों के पानी सूखने को आये हुए थे। खेतो मे मोटी मोटी दरारें पड़ी हुई थी। हरियाली के नाम पर यहाँ वहाँ रह रह कर बस बांस के झाड या सड़क के दायें बायें दो चार जन्गली बेनाम कैक्टस के फूल धूल से सने नहाये नजर आते थे। एक दो पोखरों के कीचड़ों मे आठ दस भैंसों और दो चार बच्चे नहा रहे थे। फिर आया रामनगर का पीपे वाला पूल और फिर रेत के पहाड़ और उससे भरी खाईयाँ। जहाँ तक मेरा अपना ख्याल है, इस पीपे के पूल पर गंगाजी को सबसे ज्यादा सादर याद किया जाता होगा। बिना किसी अराधना के गन्गाजी इन पीपों से अपनी छाती धुनवाने से रहीं।

लंका गेट पर श्रीव्हीलर वाला अपना किराया वसूल करके सरक लिया, पर मेरे सामने एक डेढ मील का रास्ता अजगर की तरह लेटा पड़ा था और मुझे हर तरह बस गर्म हवाओं के भंवर ही दिख रहे थे। न चाहते हुए भी मुझे एक रिकसा करना पड़ गया। उसे मैं तय किराये के ऊपर चार रुपये और देने का वायदा किया। रिकसे की सीट पर बैठने से पहले जब वो अपना धूप छॉव वाला चश्मा लगाया, तब मुझे उसके जूते पर नजर डालनी पड़ी। इस रिकसेवाले को मैं जानता था फिर भी आश्चस्त होने के लिए मैंने उससे पूछा: बनारस मे कहाँ रहते हो भईया!

उसे मेरे सम्बोधन पर जैसे विश्वास ही न हुआ। पलट कर मेरी तरफ देखा

कहाँ आसपास ही रहते हो!

हाँ भईया! करौंधी चौक के जरा आगे एक ठे गढई मे।

क्या नाम है तुम्हारा!

योजन

कितने रुपये बना लेते हो दिन भर के!

भईया सवारी की कमी त ना ह। बस इ सूरज महाराज पूरे बनारस के जरा के राख करके पीछे पड़ गईल हऊअं। तीन चार खेप के बाद हिम्मत जवाब दे जाला भईया।

हमारी बातचीत चल ही रही थी कि अचानक हमारे रिकसे के बगल मे एक सायकल वाला आ गया, बनारस के आम यूनिफार्म में। पोलिएस्टर की पैन्ट और कमीज पहने। कमीज की बाँहें केहूनी तक चपेते। पैरों मे प्लास्टिक की चप्पल, गले मे अंगोष्ठी और आँखो पर धूप छॉव वाला चश्मा। करीने से कटे और तेल से चुपड़े वाल, कटी छंटी मूछें।

रिकसेवाले की नजर उस पर पड़ी

नमस्ते गुप्ताजी

गुप्ताजी नमस्ते का बिना कोई जवाब दिये उससे पूछे

इ लंका के इलाके मे कब से आ बसे! कचहरी का इलकवे छोड़ दिये।

कचहरी पर पता नहीं कहाँ कहाँ से टैम्पू वाले हम गरीबन क पेट पर लात मारे के वास्ते आ जुटे हैं।

अउर इ लन्का मे टेम्पोवाले कम हैं क्या!

कम त ना हैं, पर का करीं गुप्ताजी! घर वाली क बेमारी मे वड़ा पड़सा गंवऊली। ऊपर से लईकन क वोझ। वड़ा लाचार रहली।

इ रेकसा निजी है का!

निजीए कह लीजिये।

अब तक मैं ये समझ रहा था कि गुप्ताजी रिकसेवाले के बचपन के मित्र रहे होंगे। पर ये मेरा भ्रम था।

गुप्ताजी अपने सायकल के पैडल पर अपने पैरों का दबाव डाल कर एकदम से रिकसे के सामने आ गए। रिकसेवाले को अपने ब्रेक पर पैर धरना पड़ा। अचानक गुप्ताजी की भद्र भाषा गाढी बनारसी हो गई जिसका अ भोंसड़ीवाले से प्रारंभ होता है और तोहरे महतारी आजी पर अः खत्स होता है। साले बनिये के दो पसली का बदन गुस्से से काँप रहा था।

भोंसड़ीवाले तीन साल हो गईल। तीन सौ रूपया लेके सरक लेला। एक्को पाई तक चुकवला बूजरो के! तीन बरीस से इ रेन्ची जेवा मे लेके तोके खोजत हई। उतर रेकसा से सारे। जब इ तीन ठे चक्का खोलव, तब घूमवा आपन रेकसा लेके अपने कपारे पर।

अब तक मैं तटस्थ होकर सबकुछ सुने जा रहा था। अचानक मेरा गुस्सा भड़कने को हुआ। मैं ये कहके रिकसे से उतरने ही वाला था कि इ बनिये कबसे बनारस के रंगदार बने बैठे हैं, झट से अपने को संतुलन मे कर लिया।

इसी बनारस के उदय प्रताप कॉलेज मे मैं आज से पन्द्रह वर्ष पहले धनवाद से वी एस सी करने आया था। थोड़ी बहुत रंगदारी मैंने भी की, जिसकी सजा मे मुझे अपना देश ही छोड़ना पड़ गया। पर इन दो वर्षों मे मैं एक बात अच्छी तरह जान चुका था कि बनारस रंगदारी के मामलों मे जात विरादरी का

भेद भाव करना नहीं जानता। जब मैं अपनी जवानी में पान की दुकानवालों को भी भईया कहना शुरू कर दिया था तो अब इस चालीसे में क्यों गुप्ताजी का गिरेवान पकड़ने का दुस्साहस करूँ! भईया की भाषा में बनारस का दिल सभी हँथिया सकते हैं, भोंसड़ी कहने से पहले किसी टिकटिकी या कट्टे के घोड़े पर उँगली रखनी पड़ती है।

मैं रिकसे से उतरकर सज्जनता के साथ गुप्ता जी से कहा: गुप्ताजी इसी रिकसे से ये अपनी रोजी रोटी कमाता है। अगर आप इसके चक्के ही खोलके ले जाओगे तो ये आपका उधार कहाँ से चुका पाएगा! यि सपरिवार या तो भूखों मर जाएगा या फिर दशाश्वमेध पर बैठके भीख मांगेगा। इस पर थोड़ा सा तो रहम कीजिए।

गुप्ताजी तरांते हुए दहाड़े: आप रहम की बात कर रहे हैं। बनारस में मुझपर किसने रहम किया! बनारस में दो साल तक मैं जेबकतरा रहा। दो चार वार मैं पकड़ा भी गया। ऐसा वैसा धुने मुझे लोग वाग। दुहाई माँ वाप की, मुझे टी वी है, अक्सर खंखार से खून आता है, इस पर भी किसी को मुझपर रहम न आया। दो हुरा ऊपर से।

अब मुझे गुप्ताजी से पूछना पड गया: कितने पैसे बनते हैं आपके इसपर!

: तीन सौ रूपये भाई साहब, अचानक गुप्ताजी की आवाज नम्र हो चली थी।

: अगर मैं इसी वक्त तीन सौ रूपये आपके हाँथ पर रख दूँ तो आप मुझे किस तरह की गारन्टी दे सकते है कि आप इस गरीब को तंग न करेंगे।

: भईया! मैं आपको अपने गले की कसम देता हूँ।

बात आई गई हो गई। गुप्ताजी अपना तीन सौ रूपया लेके सादर विदा हुए और रिकसेवाला अपने हाँथ में अपनी पगड़ी लिए चिलचिलाती धूप में मेरे सामने ऊंकड़ू बैठ गया। उसे विश्वास ही न हो रहा था कि गुप्ताजी से उसे मुक्ति मिल गई है।

जब मैं अपने घर के सामने रिकसा रुकवाया तो वो फटी आँखों से मुझे देखता ही रह गया: आप इहाँ रहते हैं भईया!

: हाँ! पर क्यों!

: मेरी घर वाली और मेरे ससुर इहाँ काम करने आते हैं।

अब मुझे चौंकना पड़ा: चनकी तुम्हारी पत्नी है!

उसकी हाँ सुनते ही मेरे दिमाग में बस एक ख्याल आया, इस तराशी सुन्दरता की किस्मत में भगवान को गरीबी लिखने से पहले कम से कम एक बार तो सोच ही लेना चाहिये था।

: मेरी माँ को आज की बात का पता नहीं चलना चाहिये, वरना वो मुझे जान से मार डालेंगी। समझा कर मैंने रिकसे वाले को विदा किया।

इस दिन के बाद मैं अक्सर देखता था कि जब तब चनकी कनखियों से मुझे देख लिया करती थी। इसके पहले नजरे तों दूर, वो अपनी पलकें तक ऊपर न उठाती थी। जब वो मेरे कमरे में कपड़े धोने आती थी, तो मेरी माँ भी आकर मेरे कमरे में बैठ जाती थी। माँ को शायद ये डर रहता होगा कि कहीं मैं चनकी की सुन्दरता पर तरस खाकर दस पच्चास पकड़ा न दूँ या फिर ये रति मुझसे कुछ उल्टे सीधे न करवा बैठे। मैं तो छुड़ी बिता कर सरक लूँगा, फिर थू थू उन पर होगी।

माँ की चौकीदारी के पीछे सारा दोष चनकी का मुझे कनखियों से देखना और मेरा यूरोप में रहना था। माँ कनखियों या डबियाई आँखों की भाषा पलक झपकते ही पढ लेती थी। मौन आमंजणों से दिये गए वढावों को मैं भी एक हद तक जानता और समझता था।

चनकी मुझे चनका तो गई थी, पर मैं उसके पति को जान चुका था और मुझे ये भी पता चल चुका था कि वो तीन बच्चों की माँ भी है। सिन्दूर और स्तन से खिलवाड़ करने के धिनौने स्तर से मैं सदैव दूर रहा और इससे अपने को यूरोप में भी दूर रखा।

चनकी के बच्चों की रखवाली का भार हरिहर के कंधों पर आ पड़ा जिसकी वजह से उसका हमारे वगान में आने का समय कुछ अनियमित हो चला था फिर भी वो हमारे यहाँ रोज ही आता था और अपना दो चार घन्टा हमारे यहाँ बिता जाता था।

मैं सपने में भी नहीं सोच सकता था कि शुरू के दिनों में मैं जिस झुग्गी की गतिविधियों के लिए सुबह चार बजे का अलार्म लगा कर सोने जाता था, वो चनकी का है।

एक वार मैं पैदल ही लंका जा रहा था कि अचानक मुझे देखकर योजन मेरे पास भागता हुआ आया। शाम के यही कोई सात बजे रहे होंगे। उसे भागते देखकर उसके तीनो बच्चे भी भागते मेरे पास आ पहुँचे। तीनों के वदन पर कपड़ा तो दूर एक करधनी तक न था। सबसे छोटा वाला तो मेरा न सिर्फ पैर जकड़े खड़ा था, बल्कि मेरे पैन्ट से अपनी नाक के पोंटे भी पोंछे जा रहा था। उसके दूसरे दो बड़े बेटे मेरी जेबों में अपना हाँथ अंडसाये उसे फाड़ने पर ही तुले हुए थे। योजन मिनतें किये जा रहा था कि मैं कम से कम एक कप चाय उसके घर पर पी ही लूँ फिर उसके बाद वो अपने रिकसे से मुझे पूरे बनारस का सफर करवा लाएगा। उसका पहला आमंजण मुझे स्वीकारना ही पड़ा। उसके बच्चे हाँड़े की तरह मुझसे चिपके हुए थे। मैं वेवश योजन की तरफ देखा। उसके एक वार सारे कहने पर ही मैं उसके बच्चों से मुक्त था। मैं योजन को वीस रूपया देकर बाहर से ही चाय लाने को कहा, लेकिन उसने साफ मना कर दिया।

अब मुझे उसके साथ नीचे उतरना ही पड़ा। चनकी हाँथ जोड़े खड़ी थी: नमस्ते! बाहर वाले भैया, आप हमारे यहाँ आने में एक वार भी नहीं झिझके!

योजन एक बंसहटी को पटक पटककर उसकी धूलें झाड़े जा रहा था। चनकी लकड़ी की आग पर एक बटलोहिया में चाय बना रही थी। बच्चे चूल्हे छेके बैठे थे। चाय देने से पहले चनकी मेरी ग्लास दसों वार पानी से धोई। बिना दूध की चाय लिए मैं पीने बैठा तो अचानक मेरी नजर अपने छत पर पड़ी, जहाँ से देखा एक परिवार अब मेरे आसपास था।

योजन रामनगर का रहने वाला था और चनकी के माता पिता मुगलसराय के आसपास किसी गाँव के रहने वाले थे। वो सातवीं तक पढी भी थी। ये मैं उसके उच्चारणों से ही जान चुका था। ये जाति के कोयरी थे। योजन चौबीस बरस और चनकी इक्कीस बरस की थी। जब योजन की शादी चनकी से हुई थी, तब वो माज ग्यारह बरस का था और अपने बाप के साथ रामनगर में टैले पर कँकड़ी बेचा करता था। जब इनका गवना हुआ तो योजन सतरह बरस का था। इन सात वर्षों के उत्थान पतन में ज्यादातर योजन ही डोलता रहा और कर्जों में नहाता रहा और कर्ज की अदायगी से घबरा कर क्षेज और

इलाका बदलता रहा, अपने को पगड़ी और झुगियों में छुपाता रहा। चनकी एक अभिशप्त अप्सरा की तरह दुर्वासा ऋषि का शाप सर आँखों पर लिए झेलती रही।

चनकी अपने पति की गरीबी को उसका दुश्चरित्र नहीं समझती थी। उसकी एक बात मैं आज तक नहीं भूला हूँ

ऽमेरे पति को कर्जदार मेरी और बच्चों की वीमारियों ने बनाया, वरना उनमें एक दोष भी नहीं ढूँढा जा सकता।

रास्ते भर बस मेरे दिमाग में एक ही ख्याल आता रहा, डबियाई आँखों में हमेशा आमंजण ही नहीं होता है। हम उनमें दूसरे तीसरे भाव देखना या ढूँढना ही नहीं जानते, विशेषकर गरीबों की आँखों में।

बर्लिन में जब तब एक दृश्य मेरी आँखों के सामने बेहद सघन हुआ और शायद इसी वजह से मैं योजन चनकी और उनके तीनों बच्चों के पास अक्सर अनायास लौटा...

मैं अपने कॉलेज के दिनों में वी एस सी में फेल होने के बाद जग हँसाई से बचने के लिए चौक के एक धर्मशाले में शरण लिया। शाम के धूँधलके से लेकर गई रात मैं मनिफिका के घाट पर जा बैठता था। एक दिन मैंने देखा कि एक आदमी अपनी आँखों में एक पोटली दबाये एक नाव वाले के सामने गिड़गिड़ाये जा रहा है। उनके समीप जाने पर मुझे पता लगा कि उस आदमी की पोटली में एक सील से बंधी नवजात बच्चे की लाश है, जिसे शीतलामाई उठा ले गई हैं। गन्गाजी में अपने बच्चे के प्रवाह के लिए उसके पास एक पाई तक न थी। मेरी लुंगी की गाँठ में धर्मशाले के पंडितजी के कुछ रूपये बंधे थे, जो वो मुझे जब तब चितरा पिच्चर के खेलों के लिए देते थे। मैं अपनी गाँठ खोलके उसमें नुचड़े सारे रूपये नाव वाले के हाँथों पर धर दिये।

एक नाव रामनगर दिशा में बढी। नाव के अगले छोर पर एक छोटा सा दिया जल रहा था। अगले छोर पर ही एक गरीब बाप अपने बच्चे की लाश अपने सीने से चिपकाये बैठा था। दशाश्वमेध घाट के मन्दिरों की वक्तियाँ टिमटिमा रही थीं, घंटियों की आवाजें पूर्र्वर होती जा रही थीं। अचानक एक छप्प के साथ सील से बन्धे बच्चे की लाश गन्गा मैया की गोद में समा गई।

फिर मुझे योजन और चनकी के बच्चे बेहद याद आते थे।

घर से आये पजों में चनकी या उसके परिवार का कोई जिक्र नहीं होता था। अपने एक पज में एक बार मुझे भाभी से इस परिवार के बारे में पूछना ही पड़ा। चनकी और उसके परिवार का क्या हालचाल है!

उन्हीं के एक पज से मुझे पता चला कि हरिहर हमारे बगान में ही अपना दम तोड़ गया। चनकी हमारे घर का कामकाज छोड़कर शायद आपके साथ जर्मनी में बैठी होगी जी। महीनों हमसे वर्तन मंजवाई। वड़ा घूरती थी आप को। अवकी बार जब आप बनारस आयेंगे तो बावतपुर में आपको लेने बनारस से ही नहीं अपने मायके से भी सैकड़ों कोयरीनों के साथ आऊँगी। जर्मनी में लड़कियाँ नहीं हैं क्या जी! जब देखो चनकी चनकी रटते रहते हैं।

योजन फिर किसी कर्जदार के भय से इलाका बदल लिया होगा! कहीं किसी दूसरे खाई में अपनी झुगगी डाल ली होगी! बिना किसी व्यवधान के अपने परिवार का पेट पाल रहा होगा!

सब कुछ खो देने के बावजूद भी खोने के लिए हमारे पास जीवनपर्यन्त कुछ न कुछ होता ही है। योजन के पास अभी भी खोने को तीन मूल्यवान चीजे थी, उसका रिकसा, चनकी और तीन बेटे। इन सात वर्षों में उसने क्या खोया, ये मैं शायद कभी न जान पाऊँगा। वस ये सोच कर मुझे बड़ी तसल्ली होती है कि बनारस में पाने के नाम पर भीख मिल ही जाती है। हमारे अपने घर से कभी कोई भिखमंगा खाली हाँथ वापस नहीं गया।

आए दिन मैं देखता था कि गदौलिया से लेकर दशाश्वमेध घाट तक सड़क के दोनों तरफ लाईन लगाकर बनारस के सारे भिखमंगे बैठे होते थे और आठ दस धुले धुलाये धोती और कुर्ते पहने सभ्रान्त वर्ग के लोग खाना बॉटते होते थे। पत्तलों पर चावल का थक्का, अरहर की दाल और ऊपर से कटहल या कौहड़े की सब्जी। भिखमन्गे बिना अपने पेट की परवाह किये जीमते रहते थे, या मुफ्त का खाना अपनी पोटलियों या गमछियों में बॉधते रहते थे।

बनारस भूख से किसी को मरने नहीं देता।

वड़ा आत्सीय शहर है बनारस।

प्रमोद कुमार सिंह